

दिव्यध्वनि - ध्वनि या भाषा एक अध्ययन

विशिष्ट संदर्भ आचार्यश्री सौरभसागरजी महाराज प्रणीत जैनाचार संहिता

- डॉ. आशीष जैन आचार्य शाहगढ़, सागर

(राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)

संयुक्तमंत्री

अ. भा. दि. जैन शास्त्रपरिषद्

aasheishjain@gmail.com

9329092390

पुव्वं जिणेहिं भणियं जहट्टियं गणहरेहिं वित्थरियं।
पुव्वाइरियक्कमजं तं वोल्लइ जो हुसट्ठि। [1]

जिनोपदिष्ट का गणधर देव द्वारा ग्रंथ — इस ग्रंथ में जो उपदेश होगा वह उपदेश मूल में जिनेंद्र देव के द्वारा दिव्य ध्वनि में उपदिष्ट है और उसको उस ही प्रकार से गणधर देव ने द्वादशांग रूप में विस्तृत किया है।

जड़-चेतन, प्रकृति-पुरुष, वस्तु ध्रुवत्व और सनातन सत्य अनादिकाल से हैं और अनंतकाल तक रहेंगे। यह ध्रुव सत्य है। जिसका अनुभवन हो या न हो, परंतु इसका ध्रुवत्व सदा रहेगा। भारतीय संस्कृति के दो प्राण हैं - श्रमण संस्कृति और वैदिक संस्कृति। ये दोनों सनातन सत्य को उद्घाटित करती हैं। श्रमण संस्कृति कहती है - जड़-चेतन अनादि से अनंत तक रहने वाले हैं, मात्र इनकी स्थिति में बदलाव होगा परंतु सत्ताध्रुव ही रहेगी। वैदिक संस्कृति ने जब वेदों को अपौरुषेय और अनादि काल से रचित हैं, ऐसा स्वीकार किया। तब से यह बात स्वतः सिद्ध हो गयी कि यहाँ अनादिकाल से अनंतकाल तक रहने वाली स्थिति का स्थान है। यह पृथक् बात है कि हम सिद्ध कितना कर पाते हैं ? और प्रकटीकरण कितना होता है ? श्रमण संस्कृति को जीवन्त स्वरूप प्रदान करने वाला जैनधर्म; जो अपने सिद्धान्त और आचार संहिता से जग में विख्यात हैं। जिसके सिद्धान्तों में और आचार संहिता में प्रतिकूल परिस्थितियों में कोई बदलाव स्वीकार नहीं हुआ है। जैनदर्शन ने कहा है - जीव और अजीव की सत्ता अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगी। अर्थात् कभी न शुरू होने वाली और समाप्त न होने वाली प्रक्रिया - ध्रुवत्व।

इन शाश्वत नियमों को बखान करने वाले कोई न कोई दिव्य पुरुष अवश्य हैं , जिन्होंने इतने व्यवस्थित और तार्किक ढंग से वस्तुतत्त्व का बखान किया है। ऐसे ही दिव्य पुरुष श्रमण संस्कृति में तीर्थंकर के नाम से जाने जाते हैं। जो जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी होते हैं -मतिज्ञान , श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। संयम के आराधना करके वे अपने स्वयं को जीवन को श्रेष्ठ बनाते हुए कैवल्य को प्राप्त करते हैं। कैवल्य अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान। अब कोई भी ज्ञान प्राप्त करना शेष नहीं है। ऐसे केवलज्ञान तीर्थंकर भगवान का विशेष सभाएं , जिन्हें समवशरण कहा जाता है। जिसकी व्यवस्थाएं अलौकिक होती है। इस अलौकिक व्यवस्था में जिनेन्द्र भगवान द्वारा दिव्यध्वनि खिरती है। और संसार के समस्त पदार्थों का ज्ञान हमें तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि से प्राप्त होता है। दिव्यध्वनि का अपना एक विशाल रूप है। तीर्थ की प्रवृत्ति उसका असाधारण कार्य है।

तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि ध्वनि रूप में है या भाषा रूप में है। इस दोनों में अनेक आचार्यों के अनेक मत है। यहां हम इसी विषय को स्पष्ट रूप से समझेंगे कि तीर्थंकरदिव्यध्वनि ध्वनि है या भाषा रूप।

v **दिव्यध्वनि की परिभाषा** - तीर्थंकर महापुरुष चार कर्मों का नाशकर जब सर्वज्ञ अवस्था प्राप्त करते हैं तब उनके तीर्थंकर नामकर्म का उदय आता है और उसके आधीन होकर उनका उपदेश होता है , इसी उपदेश को दिव्यध्वनि कहा जाता है।

v **दिव्यध्वनि में दिव्य शब्द का अर्थ** - ध्वनि का अर्थ एक प्रकार की आवाज है और वह आवाज अपने आपमें एक विलक्षण ही होती है जो सर्वसाधारण आवाजों से सर्वथा भिन्न असाधारण होती है इसीलिये इसको दिव्य कहा जाता है। जैसे—दिव्यरूप, दिव्य प्रकाश आदि।

यहां दिव्य शब्द का अर्थ है — जो शुद्ध है , परिष्कृत है , जो विमल है , जिसमें यथात्मतत्त्व प्रतिपत्ति है। जो विशुद्ध ज्ञान से भरी हुई है परंतु है मात्र ध्वनि रूप। इस ध्वनि में अत्यन्ता दिव्यता है भव्यता है स्पष्टता है और अनंतानंत अर्थों से भरी हुई है।

v **ध्वनि शब्द का अर्थ** - ध्वनि का अर्थ एक प्रकार की आवाज है और वह आवाज अपने आपमें एक विलक्षण ही होती है जो सर्वसाधारण आवाजों से सर्वथा भिन्न असाधारण होती है इसीलिये इसको दिव्य कहा जाता है। जैसे—दिव्यरूप, दिव्य प्रकाश आदि।

ध्वनि का अभिप्राय है अनक्षर आवाज और वाणी का अर्थ है अकारादि वर्णों की स्पष्टता और तज्जन्य अर्थ का स्पष्टीकरण। दोनों की प्रक्रियाएं एक —दूसरे के विरुद्ध प्रतीत होती हैं। यही कारण हुआ कि तीर्थंकर की दिव्यध्वनि का भिन्न —भिन्न आचार्यों ने अनेक प्रकार से विश्लेषण कर प्राणिमात्र को आत्म कल्याणकारी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

अर्हत तीर्थकर की इस दिव्यध्वनि में अक्षर नहीं होते। इसका नाम ध्वनि है , भाषा नहीं है। भाषा के अक्षर होते हैं ध्वनि में अक्षर नहीं होते। यदि भगवान की वाणी साक्षर होती तो इसे भाषा कहा जाता अतः यह ध्वनि निरक्षर होती है। प्रश्न होता है फिर इसका रूप क्या है ? इस सम्बन्ध में कहा गया है कि यह ध्वनि ओंकारस्वरूप है। जैसा कि देव शास्त्र गुरु पूजा में लिखा है “जिनकी धुनि है ओंकार रूप”, इसी तरह सरस्वती पूजा में लिखा है “ओंकार ध्वनि सार द्वादशांगवाणी विमल ” इस ध्वनि में कंठ, तालु, ओष्ठ आदि का उपयोग नहीं होता क्योंकि अक्षरों के उच्चारण में कंठ , तालु आदि का उपयोग करना पड़ता है। जहाँ अक्षरोच्चारण नहीं है वहाँ कंठ , तालु आदि का उपयोग भी नहीं होता इसलिये यह ध्वनि निरक्षर ही होती है। प्रश्न हो सकता है फिर द्वादशांगवाणी में अक्षर कहाँ से आये ? इसका उत्तर यह है कि द्वादशांगवाणी के दो रूप हैं — अर्थ प्रतिपादन और अक्षर रचना। इनमें अर्थ प्रतिपादन तीर्थकर द्वारा होता है और अक्षर रचना गणधर द्वारा होती है इसीलिये शास्त्रों में तीर्थकर , सर्वज्ञ को अर्थकर्ता और गणधर , श्रुतकेवली को ग्रंथकर्ता कहा गया है अर्थात् तीर्थकर भगवान ने अपनी वाणी के द्वारा जिस अर्थ का प्रतिपादन किया उसे विषय क्रम के अनुसार गणधरों ने अक्षर रूप में ग्रथित किया है। यही अर्थकर्ता और ग्रंथकर्ता का अभिप्राय है।

प्रश्न - जब भगवान का उपदेश ध्वनिरूप है अक्षररूप नहीं है तब बिना अक्षर के गणधरों ने उसे कैसे समझा ?

समाधान - भगवान की उस दिव्यवाणी में अनेक बीजाक्षर गर्भित रहते हैं और प्रत्येक बीजाक्षर एक मंत्र है, जिसमें विशाल अर्थों का समुदाय है। ये बीजाक्षर उसी तरह गर्भित हैं जिस तरह १८ महाभाषाएँ और ७०० क्षुल्लक (लघु) भाषाएँ दिव्यध्वनि में गर्भित रहती हैं। यहाँ गर्भित रहने का इतना ही अभिप्राय है जैसे कि यह कहा जाय कि एक वटबीज में विशाल वटवृक्ष गर्भित है। यद्यपि बीज में वृक्ष नहीं है किन्तु एक विशाल वृक्ष को उत्पन्न करने की जैसे एक बीज योग्यता रखता है , इसी तरह दिव्यध्वनि अनेक बीजाक्षरों एवं अनेक भाषाओं को उत्पन्न करने की शक्ति रखती है। इनमें बीजाक्षरों से अर्थ निकालने का काम गणधर का होता है , गणधर के अतिरिक्त दूसरा कोई उन अर्थों को नहीं निकाल सकता। तभी तो कहा जाता है कि भगवान की वाणी को गणधर ही झेल सकते हैं , अन्य कोई नहीं। प्रत्येक गणधर में भी बुद्धि ऋद्धि के अंतर्गत एक बीज बुद्धि नाम की ऋद्धि भी होती है , जिसके द्वारा वे तीर्थकरों की दिव्यध्वनि में उन बीजाक्षरों को खोज निकालते हैं और उन बीजाक्षरों में जो अर्थ भरे पड़े हैं उन्हें “कोष्ठस्थ धान्योपम” नाम की बुद्धि ऋद्धि के द्वारा वे अपने श्रुतज्ञान में संचित करते हैं और बाद में द्वादशांग रूप श्रुतज्ञान की अक्षररूप ग्रंथ रचना करते हैं। वह रचना भी पत्रों या कागजों पर लिखी नहीं जाती। गणधरों ने उसे भगवान की दिव्यध्वनि के रूप में सुनकर और गणधर के अन्य शिष्य, प्रशिष्यों, आरातीयों ने गणधर से सुनकर उसका बोध प्राप्त किया था अतः इन द्वादशांगों की परम्परा श्रुत नाम से अर्थात् जो सुनकर प्राप्त की जाती थी , उत्तरोत्तर चलती रही इसलिये शास्त्रों को श्रुत कहा जाता है। यह परम्परा धरसेनाचार्य तक चलती रही , बाद में यह जानकर कि आगे लोग मन्दबुद्धि होंगे, धरसेन ने अपने ज्ञान को पुष्पदन्त , भूतबलि को दिया और इन दोनों आचार्यों ने उसे षट्खण्डागम के रूप में लिपिबद्ध किया।

v दिव्यध्वनि का समय - दिव्यध्वनि का समय , अवस्थान अंतर व निमित्तादि के संबंध में आचार्य भगवन् कहते हैं -

पठादीए अक्खलिओ संझत्तिदय णवमुहुत्ताणि ।

णिस्सरदि णिरुवमाणो दिव्वझुणी जाव जोयणयं ७03 ।

सेसेसुं समएसुं गणहरदेविंदचक्कवट्टीणं ।

पण्हाणुरुवमत्थं दिव्वझुणी अ सत्तभंगीहिं ७04 । [2]

भगवान् जिनेंद्र की स्वभावतः अस्खलित और अनुपम दिव्यध्वनि तीनों संध्याकालों में नव मुहूर्त तक निकलती है और एक योजन पर्यंत जाती है। इसके अतिरिक्त गणधर देव इंद्र अथवा चक्रवर्ती के प्रश्नानुरूप अर्थ के निरूपणार्थ वह दिव्यध्वनि शेष समयों में भी निकलती है।

तीर्थंकरस्य पूर्वाह्नमध्याह्नापराह्णार्धरात्रेषु षट्षट्टिकाकालपर्यंतं द्वादशगणसभामध्ये स्वभावतो दिव्यध्वनिरुद्गच्छति अन्यकालेऽपि गणधरशक्रचक्रधरप्रश्नानंतरं यावद्भवति एवं समुद्भूतो दिव्यध्वनिः [3]

तीर्थंकरके पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न अर्धरात्रि काल में छह-छह घड़ी पर्यंत बारह सभा के मध्य सहज ही दिव्यध्वनि होय है। बहुरि गणधर इंद्र चक्रवर्ती इनके प्रश्न करने तैं और काल विषैं भी दिव्यध्वनि होय है।

यहां अभिहित दिव्यध्वनि के विषय में भगवान महावीर स्वामी के समवशरण के विशेष प्रसंग प्राप्त होते हैं। जिसमें भगवान महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि या शासनदिवस की तिथि व स्थान से संबंधित विषय निम्न है -

पंचसेलपुरे सम्मे विउले पव्वदुत्तमे । ... 52 ।

महावीरेणत्थो कहिओ भवियलोयस्स 53 ।...

इम्मिस्से वसिप्पिणीए चउत्थ-समयस्स पच्छिमे भाए ।

चोत्तीसवाससेसे किंचि विसेसूणए संते 55 ।

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्हि सावणे बहुले ।

पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्हि 56 ।

सावण बहुलपडिवदे रुद्धमुहुत्ते सुहोदए रविणो ।

अभिजिस्स पढमजोए जत्थ जुगादी मुणेयव्वो 57 [4]

पंचशैलपुर में (राजगृह में) रमणीक , विपुल व उत्तम , ऐसे विपुलाचल नाम के पर्वत के ऊपर भगवान् महावीर ने भव्य जीवों को उपदेश दिया । 52 । इस अवसर्पिणी कल्पकाल के दुःषमा-सुषमा नाम के चौथे काल के पिछले भाग में कुछ कम 34 वर्ष बाकी रहने पर , वर्ष के प्रथम मास अर्थात् श्रावण मास में प्रथम अर्थात् कृष्णपक्ष प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल के समय आकाश में अभिजित् नक्षत्र के उदित रहने पर तीर्थ की उत्पत्ति हुई 55-56 । श्रावणकृष्ण प्रतिपदा के दिन रुद्रमुहूर्त में सूर्य का शुभ उदय होने पर और अभिजित् नक्षत्र के प्रथम योग में जब युग की आदि हुई तभी तीर्थ की उत्पत्ति समझना चाहिए ।

छासट्टिदिवसावणयणं केवलकालम्मि किमट्ठं करिदे । केवलणाणे समुप्पण्णे वि तत्थ तित्थाणुप्पत्तीदो [5]

केवलज्ञान की उत्पत्ति हो जाने पर भी 66 दिन तक उनमें तीर्थ की उत्पत्ति नहीं हुई थी , इसलिए उनके केवलीकाल में 66 दिन कम किये जाते हैं ।

- v दिव्यध्वनि की विशेषता — जैनदर्शन में श्रुत परम्परा को अनादिनिधन माना गया है । जिसे हम श्रुत कहते हैं वही इस श्रुत परम्परा का विषय है । वैदिक दर्शन में जिस प्रकार वेदों को अनादिनिधन माना है वही स्थिति इस द्वादशांग श्रुत की है । वैदिक दर्शन वेदों को पौरुषेय (पुरुषकृत) नहीं मानता , उसका उद्भव वह ईश्वर से मानता है । जैनदर्शन श्रुत का उद्भव तीर्थंकर सर्वज्ञ से मानता है , साधारण व्यक्ति से उसका उद्भव नहीं मानता । जैनदर्शन श्रुत को आप्तोत्पन्न मानता है और आप्त उसको मानता है जो वीतरागी हो , सर्वज्ञ हो , साथ ही हितोपदेशी हो । यह द्वादशांग श्रुत उसी हितोपदेशिता का मूर्तिमान रूप है । तीर्थंकर महापुरुष चार कर्मों का नाशकर जब सर्वज्ञ अवस्था प्राप्त करते हैं तब उनके तीर्थंकर नामकर्म का उदय आता है और उसके आधीन होकर उनका उपदेश होता है , इसी उपदेश को दिव्यध्वनि कहा जाता है ।

- v दिव्यध्वनि सर्व भाषास्वभावी है -

तव वागमृतं श्रीमत्सर्व-भाषा-स्वभावकम् ।

प्रीणयत्यमृतं यद्वत्प्राणिनो व्यापि संसदि ॥2 [6]

सर्व भाषाओं में परिणत होने के स्वभाव को लिये हुए और समवशरण सभा में व्याप्त हुआ आपका श्री संपन्न वचनामृत प्राणियों को उसी प्रकार तृप्त करता है जिस प्रकार कि अमृत पान। 12।

योजनांतरदूरसमीपस्थाष्टादशभाषासप्तहत्तशतकुभाषायुत –

तिर्यग्देवमनुष्यभाषाकारन्यूनाधिकभावातीतमधुरमनोहरगंभीरविशदवागतिशयसंपन्नः
...महावीरोऽर्थकर्ता [7]

एक योजन के भीतर दूर अथवा समीप बैठे हुए अठारह महाभाषा और सातसौ लघु भाषाओं से युक्त ऐसे तिर्यच , मनुष्य, देव की भाषारूप में परिणत होने वाली तथा न्यूनता और अधिकता से रहित मधुर , मनोहर, गंभीर और विशद ऐसी भाषा के अतिशय को प्राप्त...श्री महावीर तीर्थकर अर्थकर्ता हैं।

एदेहितो संखेज्जगुणभासासंभलिदतित्थयरवयणविणिग्गयज्झुणि... [8]

इनसे (चार अक्षौहिणी अक्षर-अनक्षर भाषाओं से) संख्यातगुणी भाषाओं से भरी हुई तीर्थकर के मुख से निकली दिव्यध्वनि...।

अद्धं च सर्वभाषात्मकम् [9]

दिव्यध्वनि आधी सर्वभाषा रूप थी।

दिव्यध्वनि एक भाषा स्वभावी है -

एकतयोऽपि च सर्वनृभाषा...। [10]

यद्यपि वह दिव्यध्वनि एक प्रकार की (अर्थात् एक भाषारूप) थी तथापि भगवान् के माहात्म्य से सर्व मनुष्यों की भाषा रूप हो रही थी।

v दिव्यध्वनि आधी मागधी भाषा व आधी सर्वभाषा रूप है -

अद्धं भगवद्भाषाया मगधदेशभाषात्मकं। अद्धं च सर्वभाषात्मकं [11]

तीर्थकर की दिव्यध्वनि आधी मगध देश की भाषा रूप और आधी सर्व भाषा रूप होती है।

v दिव्यध्वनि बीजाक्षर रूप होती है -

अणंततथगब्भबीजपदघडियसरीरा... [12]

जो अनंत पदार्थों का वर्णन करती है, जिसका शरीर बीजपदों से गढ़ा गया है।

संखित्तसहरयणमणंतत्थावगमहेदुभूदाणेगलिंगसंगयं बीजपदं णाम। तेसिमणेयाणं बीजपदाणं दुवालसंगप्पयाणमट्टारससत्तसयभास-कुभाससरूवाणं परूवओ अत्थकत्तारो णाम।=संक्षिप्त शब्द रचना से सहित व अनंत अर्थों के ज्ञान के हेतुभूत अनेक चिह्नों से सहित बीजपद कहलाता है। अठारह भाषा व सात सौ कुभाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीजपदों का प्ररूपक अर्थकर्ता है [13]

v दिव्यध्वनि मेघ गर्जना रूप होती है -

दिव्यमहाध्वनिरस्य मुखाब्जान्मेघरवानुकृतिर्निरगच्छत् [14]

भगवान् के मुख रूपी कमल से बादलों की गर्जना का अनुकरण करने वाली अतिशय युक्त महादिव्यध्वनि निकल रही थी।

v दिव्यध्वनि अक्षर अनक्षर उभयस्वरूप थी -

अक्खराणक्खरप्पिया [15]

(दिव्यध्वनि) अक्षर-अनक्षरात्मक है।

v दिव्यध्वनि अर्थ निरूपक है -

छहव्वणवपयत्थे पंचट्टीकायसत्ततच्चाणि। णाणाविहहेदूहिं दिव्वझूणी भणइ भव्वाणं१०५ [16]

यह दिव्यध्वनि भव्य जीवों को छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्वों का नाना प्रकार के हेतुओं द्वारा निरूपण करती है।१०५। [17]

स्पष्टं तत्तदभीष्टवस्तुकथनम् [18]

जो दिव्यध्वनि उस उसकी अभीष्ट वस्तु का स्पष्ट कथन करने वाली है।

v श्रोताओं की भाषारूप परिणमन कर जाती है -

अनानात्मापि तद्वृत्तं नानापात्रगुणाश्रयम् ।

सभायां दृश्यते नानादिव्यमंबु यथावनो। [19]

जिस प्रकार आकाश से बरसा पानी एक रूप होता है , परंतु पृथिवी पर पड़ते ही वह नाना रूप दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार भगवान् की वह वाणी यद्यपि एक रूप थी तथापि सभा में सब जीव अपनी अपनी भाषा में उसका भाव पूर्णतः समझते थे।[20]

एकतयोऽपि च सर्वनृभाषाः सौतरनेष्टबहुश्च कुभाषाः।

अप्रतिपत्तिमपास्य च तत्त्वं बोधयन्ति स्म जिनस्य महिम्ना ७० [21]

यद्यपि वह दिव्यध्वनि एक प्रकार की थी तथापि भगवान् के माहात्म्य से समस्त मनुष्यों की भाषाओं और अनेक कुभाषाओं को अपने अंतर्भूत कर रही थी अर्थात् सर्व की अपनी-अपनी भाषारूप परिणामन कर रही थी , और लोगों का अज्ञान दूर कर उन्हें तत्त्वों का बोध करा रही थी। 70। [22]

अनक्षरात्मकत्वेन श्रोतृश्रोत्रप्रदेशप्राप्तिसमयपर्यंत...तदनंतरं च श्रोतृजनाभिप्रेतार्थेषु संशयादिनिराकरणेन सम्यग्ज्ञानजनकं... [23]

केवली की दिव्यध्वनि सुनने वाले के कर्ण प्रदेशकौ यावत् प्राप्त न होइ तावत् काल पर्यंत अनक्षर ही है...जब सुनने वाले के कर्ण विषै प्राप्त हो है तब अक्षर रूप होइ यथार्थ वचन का अभिप्राय रूप संशयादिककौ दूर करै है।

v देव उसे सर्व भाषा रूप परिणामाते हैं

कथमेवं देवोपनीतत्वमिति चेत् ।

मागधदेवसंनिधाने तथा परिणामतया भाषया संस्कृतभाषाया प्रवर्तते [24]

प्रश्न—यह देवोपनीत कैसे है ? उत्तर—यह देवोपनीत इसलिए है कि मागध देवों के निमित्त से संस्कृत रूप परिणत हो जाती है।[25]

v यदि अक्षरात्मक है तो ध्वनि रूप क्यों कहते हैं -

तथा च कथं तस्य ध्वनित्वमिति चेन्न , एतद्भाषारूपमेवेति निर्देष्टुमशक्यत्वतः तस्य ध्वनित्वसिद्धेः [26]

प्रश्न— जबकि वह अनेक भाषारूप है तो उसे ध्वनिरूप कैसे माना जा सकता है?

उत्तर—नहीं, केवली के वचन इसी भाषारूप ही हैं, ऐसा निर्देश नहीं किया जा सकता है, इसलिए उनके वचन ध्वनिरूप हैं, यह बात सिद्ध हो जाती है।

v अनक्षरात्मक है तो अर्थ प्ररूपक कैसे हो सकती है -

वयणेण विणा अत्थपदुप्पायणं ण संभवइ , सुहुमअत्थाणं सण्णाए परूवणाणुववत्तीदो ण चाणक्खराए झुणीए अत्थपदुप्पायणं जुज्जदे , अणक्खरभासतिरिक्खे मोत्तूणण्णेसिं तत्तो अत्थावगमाभावादो। ण च दिव्वज्झुणी अणक्खरप्पिया चेव , अट्टारससत्तसयभास-कुभासप्पियत्तादो। ...तेसिमणेयाणं बीजपदाणं दुवालसंगप्पयाणमट्टारस-सत्तसयभास-कुभासरूवाणं परूवओ अत्थकत्तारणाम , बीजपदणिलीणत्थपरूवयाणं दुवाल-संगाणं कारओ , गणहरभडारओ गंथकत्तारओ त्ति अब्भुवगमादो [27]

प्रश्न—वचन के बिना अर्थ का व्याख्यान संभव नहीं , क्योंकि सूक्ष्म पदार्थों की संज्ञा अर्थात् संकेत द्वारा प्ररूपणा नहीं बन सकती। यदि कहा जाये कि अनक्षरात्मक ध्वनि द्वारा अर्थ की प्ररूपणा हो सकती है, सो भी योग्य नहीं है; क्योंकि, अनक्षर भाषायुक्त तिर्यचों को छोड़कर अन्य जीवों को उससे अर्थ ज्ञान नहीं हो सकता है। और दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक ही हो सो भी बात नहीं है ; क्योंकि वह अठारह भाषा व सात सौ कुभाषा स्वरूप है। उत्तर —अठारह भाषा व सात सौ कुभाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीज पदों का प्ररूपक अर्थकर्ता है। तथा बीज पदों में लीन अर्थ के प्ररूपक बारह अंगों के कर्ता गणधर भट्टारक ग्रंथकर्ता हैं , ऐसा स्वीकार किया गया है। अभिप्राय यह है कि बीजपदों का जो व्याख्याता है वह ग्रंथकर्ता कहलाता है। (और भी देखें वक्ता -3)

24. धवला 9/4,1,7/58/10ण बीजबुद्धीये अभावो, ताए विणा

25. अवगयतिथयरबयणविणिग्गयअक्खराणक्खरप्पयबहुलिंगयबीजपदाणं गणहरदेवाणं दुवालसंगा भावप्पसंगादो।=बीजबुद्धि का अभाव नहीं हो सकता क्योंकि उसके बिना गणधर देवों का तीर्थंकर के मुख से निकले हुए अक्षर और अनक्षर स्वरूप बीजपदों का ज्ञान न होने से द्वादशांग के अभाव का प्रसंग आयेगा।

26. एक ही भाषा सर्व श्रोताओं की भाषा कैसे बन सकती है

27. धवला 9/4,1,44/128/6परोवदेसेण विणा अक्खरणक्खरसरूवासेसभासंतरकुसलो समवसरणजणमेत्तरूवधारित्तणेण अम्हम्हाणं भासाहि अम्हम्हाणं चेव कहदि त्ति सव्वेसिं पच्चउप्पायओ समवसरणजणसोदिंदिएसु सगमुहविणिग्गयाणेयभासाणं संकरेण पवेसस्स विणिवारओ, गणहरदेवो गंथकतारो। =प्रश्न—एक ही बीजपद रूप भाषा सर्व जीवों को उन उनकी भाषा रूप से ग्रहण होनी कैसे संभव है। उत्तर—परोपदेश के बिना अक्षर व अनक्षर रूप सब भाषाओं में

कुशल समवसरण में स्थित जन मात्ररूप के धारी होने से 'हमारी हमारी भाषा से हम-हमको ही कहते हैं' इस प्रकार सबको विश्वास कराने वाले तथा समवशरणस्थ जनों के कर्ण इंद्रियों में अपने मुँह से निकली हुई अनेक भाषाओं के सम्मिश्रित प्रवेश के निवारक ऐसे गणधर देव ग्रंथकर्ता हैं। (वास्तव में गणधर देव ही जनता को उपदेश देते हैं।)

दिव्यध्वनि के संबंध में आचार्यों के दोनों मत है भाषात्मक और अभाषात्मक। इसे प्रथमदृष्ट्या पृथक् पृथक् समझते हैं।

- v दिव्यध्वनि भगवान के सर्वांग से होती है - दिव्यध्वनि मुख से नहीं होती है। यह भगवान के सर्वांग से होती है। इसके संबंध में आचार्य कहते हैं -

एदासिं भासाणं तालुवदंतोदुकंठवावारं।

परिहरियं एक्ककालं भव्यजणाणं दरभासो 62 [28]

तालु, दंत, ओष्ठ तथा कंठ के हलन-चलन रूप व्यापार से रहित होकर एक ही समय में भव्यजनों को आनंद करने वाली भाषा (दिव्यध्वनि) के स्वामी है। 62।

विशेषार्थ—जिस समय दिव्यध्वनि खिरती है उस समय भगवान् का मुख बंद रहता है।

- v दिव्यध्वनि मुख से ही होती है -

सकलज्ञानावरणसंशयाविर्भूतातिंद्रियकेवलज्ञानः रसनोपष्टंभमात्रादेव वक्तृत्वेन परिणतः। सकलान् श्रुतविषयानर्थानुपदिशति [29]

सकल ज्ञानावरण के क्षय से उत्पन्न अतींद्रिय केवलज्ञान जिह्वा इंद्रिय के आश्रय मात्र से वक्तृत्व रूप परिणत होकर सकलश्रुत विषयक अर्थों के उपदेश करता है।

तत्प्रश्नांतरं घातुश्चतुर्मुख विनिर्गता।

चतुर्मुखफला सार्था चतुर्वर्णाश्रमाश्रया 3 [30]

गणधर के प्रश्न के अनंतर दिव्यध्वनि खिरने लगी। भगवान् की दिव्यध्वनि चारों दिशाओं में दिखने वाले चारमुखों से निकलती थी, चार पुरुषार्थ रूप चार फल को देने वाली थी, सार्थक थी।

दिव्यमहाध्वनिरस्य मुखाब्जान्मेघरवानुकृतिर्निरगच्छत् ।

भव्यमनोगतमोहतमोघ्नन् अद्युतदेष यथैव तमोरिः 69 [31]

स्फुरद्गिरिगुहोद्भूतप्रतिश्रुद् ध्वनिसंनिभः ।

प्रस्पष्टवर्णो निरगाद् ध्वनिः स्वायंभुवान्मुखात् 83 [32]

भगवान् के मुखरूपी कमल से बादलों की गर्जना का अनुकरण करने वाली अतिशययुक्त महादिव्यध्वनि निकल रही थी और वह भव्य जीवों के मन में स्थित मोहरूपी अंधकार को नष्ट करती हुई सूर्य के समान सुशोभित हो रही थी। 69। जिसमें सब अक्षर स्पष्ट हैं ऐसी वह दिव्यध्वनि भगवान् के मुख से इस प्रकार निकल रही थी जिस प्रकार पर्वत की गुफा के अग्रभाग से प्रतिध्वनि निकलती है। 83।

केवलिमुखारविंदविर्निगतो दिव्यध्वनिः ।

केवली के मुखारविंद से निकलती हुई दिव्यध्वनि... [33]

उत्पादव्ययध्रौव्यप्रपंचः समयः । तेषां च भगवता साक्षान्मातृकापदरूपतयाभिधानात् [34]

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य के वर्णन को समय कहते हैं , उनके स्वरूप को साक्षात् भगवान् ने अपने मुख से अक्षररूप कहा।

v **दिव्यध्वनि ध्वनि रूप में** – दिव्यध्वनि में ध्वनि शब्द का प्रयोग है जो यह परिलक्षित करता है कि यह ध्वनि रूप ही है। दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक होती है। इस संबंध में कथन है –

यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं [35]

जो सबका हित करने वाली तथा वर्ण विन्यास से रहित है (ऐसी दिव्यध्वनि...)।

भाषात्मको द्विविधोऽक्षरात्मकोऽनक्षरात्मकश्चेति। अक्षरात्मकः संस्कृत... , अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादिशब्दरूपो दिव्यध्वनिरूपश्च। [36]

भाषात्मक शब्द दो प्रकार के होते हैं। अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक। अक्षरात्मक शब्द संस्कृतादि भाषा के हेतु हैं। अनक्षरात्मक शब्द द्वीन्द्रियादि के शब्द रूप और दिव्यध्वनि रूप होते हैं।

दिव्यध्वनि भाषा के रूप में – दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक नहीं होती है। इस संबंध में कथन है –

तीर्थकरवचनमनक्षरत्वाद् ध्वनिरूपं तत एव तदेकम् । एकत्वान्न तस्य द्वैविध्यं घटत इति चेन्न , तत्र स्यादित्यादि असत्यमोषवचनसत्त्वतस्तस्य ध्वनेरक्षनयत्वासिद्धेः ।[37]

प्रश्न—तीर्थकर के वचन अनक्षररूप होने के कारण ध्वनिरूप हैं , और इसलिए वे एक रूप हैं , और एक रूप होने के कारण वे सत्य और अनुभय इस प्रकार दो प्रकार के नहीं हो सकते ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि केवली के वचन में ‘स्यात्’ इत्यादि रूप से अनुभय रूप वचन का सद्भाव पाया जाता है, इसलिए केवली की ध्वनि अनक्षरात्मक है यह बात असिद्ध है।

साक्षर एव च वर्णसमूहान्नैव विनार्थगतिर्जगति स्यात् ।[38]

दिव्य ध्वनि अक्षररूप ही है , क्योंकि अक्षरों के समूह के बिना लोक में अर्थ का परिज्ञान नहीं हो सकता ।73 ।

यत्पृष्ठमादितस्तेन तत्सर्वमनुपूर्वशः । वाचस्पतिरनायासाद्भरतं प्रत्यबूबुधत् ।90 ।[39]

भरत ने जो कुछ पूछा उसको भगवान् ऋषभदेव बिना किसी कष्ट के क्रमपूर्वक कहने लगे ।90 ।

दिव्यध्वनि ध्वनि रूप में ही है भाषा रूप में नहीं है – (मौलिक चिंतन तर्क सहित)

आचार्यश्री सौरभसागरजी महाराज प्रणीत जैनाचार संहिता में वर्णित दिव्यध्वनि के प्रसंग –
आचार्यश्री सौरभसागरजी महाराज प्रणीत जैनाचार संहिता में दो स्थानों पर दिव्यध्वनि के संबंध में चर्चा की है।

वर्धमान जिन शासन नायक, कर्म रहित जिनदेव महान्।

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, तीन लोक पूजित भगवान्॥

जैन धर्म के प्रखर प्रवर्तक, विपुलाचल उपदेश दिया।

नित्य वंदना चरण कमल की, जैनाचार प्रवेश किया॥

दिव्यध्वनि के विस्तारक मुनि, वृषभ सेन गाँैतम स्वामी।

ज्ञान श्रृंखला निराबाध चल, घटती आई अविरामी॥

अंतिम अंग ज्ञानधर मुनिवर, श्रेष्ठ मुनि धरसेन कहे।

पुष्पदंत अरू भूतबली को शुद्ध ज्ञान दे माँन रहे॥

उपसंहार — दिव्यध्वनि के संबंध में आचार्यों के कथन ही प्रमाणिक है। उपरोक्त कथन के अनुसार यह सुस्पष्ट होता है कि गणधर भी जो तीर्थंकर की दिव्यध्वनि साक्षात् सुनते हैं उनके पल्ले भी दिव्यध्वनि में प्रतिपादित अर्थ का अनंतवाँ भाग पड़ता है अतः दिव्यध्वनि की महिमा अपरम्पार है। दिव्यध्वनि में बीजाक्षरों के अतिरिक्त जो १८ महाभाषाएँ और ७०० लघु भाषायें गर्भित रहती हैं , वे भी वटबीज में वटवृक्ष की तरह ही हैं, अन्तर इतना है कि बीजाक्षरों को खोजना और उनसे अर्थ निकालना गणधरों के एकाधिकार के अंतर्गत आता है और भाषाओं का पता लगाना तथा उनको श्रोताओं की भाषा में श्रोताओं तक पहुँचाना देवों का एकाधिकार है इसीलिये देवकृत १४ अतिशयों में अर्द्धमागधी भाषा भी आती है अर्थात् भगवान् की वाणी को अर्द्धमागधी भाषा में परिणत करना देवों का कार्य था। यहाँ यह आशंका होती है यह अर्द्धमागधी कौन सी, किस देश की भाषा है ? अथवा ७०० लघु भाषाओं में से ही एक है। इसका उत्तर यह है कि भगवान् का समवशरण सबसे पहले विपुलाचल पर्वत (बिहार) पर रचा गया। उस समय बिहार को मगध बोला जाता था। समवशरण में जो मनुष्य श्रोता उपस्थित थे उनमें आधी संख्या मगध देश के श्रोताओं की थी और आधी संख्या अन्य सभी देशों के निवासियों की थी अतः देव लोग भगवान् की वाणी को आधी मगध भाषा रूप में आधी अन्य सर्व भाषा के रूप में , परिणामाते थे इसलिये इसका नाम अर्द्धमागधी पड़ा। इसका व्युत्पत्त्यर्थ इस प्रकार है —“अर्द्ध मगधभाषात्मकं अर्द्ध सर्वभाषात्मकम् अर्थात् आधी मगध भाषा रूप , आधी सर्वभाषा रूप जो वाणी सुनाई देती थी वह अर्द्धमागधी भाषा थी। यह महावीर के समय दिव्यध्वनि का रूप थी। यह दिव्यध्वनि सर्वांग से निकलती है क्योंकि यह ध्वनि है , जैसे घंटे को किसी भी तरफ से लकड़ी मारो उसकी आवाज सारे घंटे से निकलती हुई कही जायेगी। इस तरह दिव्यध्वनि का अपना एक विशाल रूप है और तीर्थ की प्रवृत्ति उसका असाधारण कार्य है , लेकिन दिव्यध्वनि का यह प्रभाव गणधर के माध्यम से ही प्रकट होता है। गणधर के बिना दूसरा उसे कोई झेल नहीं सकता अतः सामान्य श्रुतकेवली की अपेक्षा गणधर श्रुतकेवली का और भी अधिक प्रभाव है , ठीक उसी तरह से जैसे सामान्य केवली की अपेक्षा तीर्थंकर केवली का अधिक महत्व होता है। एक —एक तीर्थंक्ात्रि केवली के समवशरण में अनेक सामान्य केवली होते हैं और एक गणधर के रहते हुये समवशरण में अनेक श्रुतकेवली रहते हैं लेकिन जो प्रभाव समवशरण में तीर्थंकर और गणधर का होता है वह अन्य सामान्य केवलियों एवं श्रुत केवलियों का नहीं होता है।

[1] रयणसार-2

[2] तिलोयपण्णत्ति/4/903-904

[3] 903-904। (कषायपाहुड़ 1/1,1/96/126/2)।

गोम्मटसार जीवकांड / जीवतत्त्व प्रदीपिका/356/761/10

[4] धवला 1/1,1,1/ गाथा 52-57/61-63

[5] (धवला 9/4,1,44/ गाथा 29/120), (कषायपाहुड़/1/1-1/56/ गाथा 20/74)।

धवला 9/4,1,44/120/9, (कषायपाहुड़ 1/1,1/57/75/5)।

[6] स्वयंभू स्तोत्र/ मू./97

[7] (कषायपाहुड़ 1/1,1/126/1) (धवला 1/1,1,50/284/2) (चंद्रप्रभ चरित/ 18/1);
(अलंकार चिंतामणि/1/99) धवला 1/1,1/61/1

[8] (कषायपाहुड़ 1/1,1/54/72/3) (पंचास्तिकाय / तात्पर्यवृत्ति/1/4/6 पर उद्धृत)

धवला 9/4,1,9/62/3

[9] (पंचास्तिकाय / तात्पर्यवृत्ति/ 2/8/6 पर उद्धृत) , दर्शनपाहुड़/ टी./ 35/28/12 (क्रियाकलाप/3-16/248/2)

[10] महापुराण/23/70

[11] (चंद्रप्रभचरित/18/1) (क्रियाकलाप/3-16/248/2) दर्शनपाहुड़/ टी./35/28/12

[12] कषायपाहुड़ 1/1,1/96/126/2

[13] धवला 9/4,1,44/127/1 (धवला 9/4,1,54/259/7)

[14] महापुराण/23/69

[15] कषायपाहुड़/1/1,1/96/126/2

[16] तिलोयपण्णत्ति/4/905

[17] (कषायपाहुड़/1/1,1/96/126/2)

[18] पंचास्तिकाय / तात्पर्यवृत्ति/2/8/6

[19] हरिवंशपुराण/58/15

[20] (महापुराण/1/187)

[21] महापुराण/23/70

[22] (कषायपाहुड़/1/1,1/54/72/4) (धवला/1/1,1,50/284/2) (पंचास्तिकाय / तात्पर्यवृत्ति/1/4/6)

[23] गोम्मटसार जीवकांड / जीवतत्त्व प्रदीपिका/227/488/15

[24] दर्शनपाहुड़/ टी./35/28/13

[25] (क्रियाकलाप/ टी./3-16/248/3)

[26] धवला/1/1,1,50/284/3

[27] धवला 9/4,1,44/126/8

[28] तिलोयपण्णत्ति/1/62(समाधिशतक/मू./2);(तिलोयपण्णत्ति/4/902);(हरिवंशपुराण/2/113);(हरिवंशपुराण/9/224);(हरिवंशपुराण/56/116);(हरिवंशपुराण/9/223);(महापुराण/1/184);(महापुराण/24/82);(पंचास्तिकाय / तात्पर्यवृत्ति/1/4/9 पर उद्धृत) ;(पंचास्तिकाय / तात्पर्यवृत्ति/ 2/8/5 पर उद्धृत)।
कषायपाहुड़/1/1,1/97/129/14

[29] राजवार्तिक/2/19/10/132/7

[30] हरिवंशपुराण/58/3

[31] महापुराण/23/69

[32] महापुराण/24/83

[33] नियमसार / तात्पर्यवृत्ति/174

[34] स्याद्वादमंजरी/30/335/20

[35]

[37] धवला 1/1,1,50/283/8

[38] महापुराण/23/73 ...

[39] महापुराण/1/190

Posted by: डॉ आशीष जैन आचार्य at March 15, 2025 No comments:

Email